

राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ के लिए

एसबी सिविल रिट याचिका संख्या 1841/2018

विनोद कुमार सैनी पुत्र श्री खेम चंद सैनी, निवासी वार्ड नंबर 3, चांदमारी रोड खेतड़ी, तहसील खेतड़ी, जिला झुंझुनू, राजस्थान।

-----याचिकाकर्ता

बनाम

1. सचिव, कार्मिक निदेशक, सचिवालय, जयपुर।
2. सचिव, आयुर्वेद एवं भारतीय चिकित्सा विभाग राजस्थान, आयुष भवन, सेक्टर-26, प्रताप नगर, जयपुर।
3. निदेशक, आयुर्वेद विभाग, राजस्थान, अशोक मार्ग, सावित्री कॉलेज, अजमेर।
4. जिला आयुर्वेद अधिकारी, झुंझुनू, राजस्थान।
5. उप निदेशक, आयुर्वेद विभाग, मिनी सचिवालय, जयपुर।

-----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता(ओं) के लिए	:	श्री निखिल सैनी
प्रतिवादी के लिए	:	श्री विज्ञान शाह-एएजी श्री विशेष शर्मा श्री सोमित्र के लिए चतुर्वेदी-उप-जीसी

माननीय श्रीमान. जस्टिस अनूप कुमार ढांड

आदेश

06/09/2024

प्रकाशनीय

1. इस याचिका के माध्यम से अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 16.09.2016 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध बिना संचयी प्रभाव के एक वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने का दंड दिया गया है।
2. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्रस्तुत की, हालाँकि, उसे दिनांक 09.11.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और दिनांक 16.09.2016 के दंडात्मक आदेश को बरकरार रखा गया। दोनों आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने यह रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।
3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की अपने कर्तव्य से जानबूझकर अनुपस्थिति की घटना 07.08.2014 से 14.08.2014 के बीच हुई, और राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 (संक्षेप में, "1958 के नियम") के नियम 17 के तहत, 18 महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद, उस पर आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें आरोप लगाया गया कि वह बिना पूर्व अनुमति के कर्तव्य से अनुपस्थित रहा और जिसके कारण आयुर्वेदिक औषधालय बंद रहा और रोगियों को भारी असुविधा का सामना करना पड़ा। वकील ने कहा कि एक ही आरोप को तीन भागों में विभाजित किया गया था, जिसके जवाब में याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र के साथ एक विस्तृत जवाब प्रस्तुत

किया था, जिसमें उसने विशिष्ट बचाव किया था कि 07.08.2014 को उसने डिस्पेंसरी में आधा दिन काम किया, उसके बाद वह बीमार हो गया और उच्च अधिकारियों को टेलीफोन पर सूचित किया और अगले दिन उसने अपनी बीमारी के बारे में उच्च अधिकारियों को लिखित संदेश भेजा। वकील ने कहा कि ये सभी तथ्य और सामग्री अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष उपलब्ध थे, लेकिन इन्हें नजरअंदाज करते हुए और केवल जिला आयुर्वेद अधिकारी द्वारा किए गए पत्रों/संचार के आधार पर याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है। वकील ने कहा कि इन परिस्थितियों में, दोनों प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

4. इसके विपरीत, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अस्पताल का एक जिम्मेदार अधिकारी होने के नाते, याचिकाकर्ता को बीमारी के कारण सात दिनों की अनुपस्थिति के बारे में उच्च अधिकारियों को सूचित करना था, लेकिन उन्होंने ऐसा कोई संवाद नहीं किया, जिसके कारण डिस्पेंसरी एक सप्ताह तक बंद रही, जिससे मरीजों को कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा, बल्कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी याचिकाकर्ता के कदाचार के बारे में तथ्यात्मक निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं और तदनुसार, याचिकाकर्ता को उक्त आरोप का दोषी पाया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप उचित नहीं है।

5. बार में प्रस्तुत किए गए तर्कों को सुना और उन पर विचार किया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

6. वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दा यह है कि "क्या न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किए गए दंड के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है या नहीं?"

7. कानून का यह सुस्थापित प्रस्ताव है कि जांच रिपोर्ट के आधार पर मामले में, यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्यों का अध्ययन करने और अपराधी की सुनवाई के बाद पाता है कि अपराधी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध हो गए हैं, तो दंड देते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दंड की मात्रा पर विचार करना होगा।

8. अतः इस मामले में, अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि 1958 के नियम 17 के अंतर्गत आरोप पत्र याचिकाकर्ता को दिया गया था और उसके उत्तर तथा अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों पर विचार करने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता द्वारा 07.08.2014 से 14.08.2014 तक सात दिनों से अधिक समय तक झूटी से अनुपस्थित रहने के संबंध में कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया और जिसके कारण आयुर्वेदिक औषधालय एक सप्ताह तक बंद रहा, जिससे मरीजों को कठिनाई और असुविधा हुई। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के उपरोक्त निष्कर्ष और एक वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने के दंड को अपीलीय प्राधिकारी ने बरकरार रखा है। याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी की क्षमता के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया है और किसी के खिलाफ दुर्भावना का कोई आरोप नहीं लगाया गया है। इसलिए, यह न्यायालय अपीलीय न्यायालय या प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नाटक राज्य बनाम एन. गंगाराज (2020) 3 एससीसी 423 के मामले में यह माना है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में, लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच करने वाले प्राधिकारियों के निर्णय पर अपील न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय का गठन नहीं किया गया है। साक्ष्यों की समीक्षा करना और उन साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है।

10. सबसे पहले, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कुछ मामलों में, विभागीय जाँच और उसमें प्राप्त निष्कर्षों में सामान्यतः उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है और न्यायालय इस मामले में अपीलीय न्यायालय या प्राधिकरण की शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा। ऐसे मामलों में, यदि यह पाया जाता है कि अनुशासनात्मक/घरेलू जाँच, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने, उचित अवसर न देने, साक्ष्य-आधारित निष्कर्षों के अभाव और/या कर्मचारी के सिद्ध कदाचार के अनुपात से पूरी तरह से असंगत होने के कारण दोषपूर्ण है, तो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायालय का हस्तक्षेप करने का अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित है।

11. भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुनासेकरन के मामले में (2015) 2 एससीसी 610 में रिपोर्ट किए गए पैरा 12 से 15 में, यह निम्नानुसार माना गया है:

“12. सुस्थापित स्थिति के बावजूद, यह जानकर अत्यंत पीड़ा होती है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य किया है, और जाँच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों का भी पुनर्मूल्यांकन किया है। आरोप । पर निष्कर्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय प्रथम अपील की द्वितीय अदालत के रूप में कार्य नहीं करता है और न ही कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि: (क) जाँच किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है; (ख) जाँच उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है; (ग) कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है; (घ) प्राधिकारियों ने मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण स्वयं को निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुँचने से रोक लिया है; (ङ) प्राधिकारियों ने स्वयं को अप्रासंगिक या बाहरी बातों से प्रभावित होने दिया है। (च) निष्कर्ष, पहली नजर में, इतना पूर्णतः मनमाना और मनमानीपूर्ण है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता था; (छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को स्वीकार करने में भूलवश असफल रहा था; (ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अस्वीकार्य साक्ष्य को भूलवश स्वीकार कर लिया था, जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया था; (झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय निम्न कार्य नहीं करेगा: (i) साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन ; (ii) जाँच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, यदि जाँच विधि के अनुसार की गई हो; (iii) साक्ष्य की पर्याप्तता की जाँच करना; (iv) साक्ष्य की विश्वसनीयता की जाँच करना; (v) हस्तक्षेप करना, यदि कोई कानूनी साक्ष्य हो जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हों। (vi) तथ्य की त्रुटि को सुधारना, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न प्रतीत हो; (vii) दंड की आनुपातिकता पर विचार करना, जब तक कि वह उसके विवेक को आघात न पहुँचा दे।

14. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. श्री रामा राव के प्रारंभिक निर्णयों में से एक में, उपरोक्त कई सिद्धांतों पर चर्चा की गई है और यह निष्कर्ष निकाला गया है:-

“7.संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी कार्यवाही में उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच करने वाले प्राधिकारियों के निर्णय के विरुद्ध अपील न्यायालय के रूप में गठित नहीं है: उसका उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि क्या जाँच उस निमित्त सक्षम प्राधिकारी द्वारा और उस निमित्त निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है, और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन तो नहीं हुआ है। जहाँ कोई ऐसा साक्ष्य हो, जिसे जाँच करने का दायित्व सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया हो और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का यथोचित समर्थन करता हो कि अपराधी अधिकारी आरोप का दोषी है, वहाँ अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट हेतु याचिका में साक्ष्यों की समीक्षा करना और साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है। उच्च न्यायालय निस्संदेह हस्तक्षेप कर सकता है जहाँ विभागीय प्राधिकारियों ने अपराधी के विरुद्ध कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के विपरीत या जाँच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए की हो या जहाँ प्राधिकारियों ने कुछ कारणों से स्वयं को निष्पक्ष निर्णय लेने से वंचित रखा हो। मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से परे जाकर या खुद को अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने देकर या जहाँ निष्कर्ष पूरी तरह से मनमाना और सनकी हो कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता था, या इसी तरह के आधार पर। लेकिन विभागीय अधिकारी, यदि जाँच अन्यथा उचित रूप से की जाती है, तो तथ्यों के एकमात्र निर्णायक होते हैं और यदि कोई कानूनी साक्ष्य है जिस पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता ऐसा मामला नहीं है जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट की कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सके।”

15. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चित्रा मामले में वेंकट राव (1975) 2 एससीसी 557) में, सिद्धांतों पर पैरा 21-24 में आगे चर्चा की गई है, जो इस प्रकार है:-

“21. विभागीय जाँचों से निपटने में अनुच्छेद 226 का दायरा इस न्यायालय के समक्ष आया है। आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. श्री राम राव [एआईआर 1963 एससी 1723] मामले में इस न्यायालय द्वारा दो प्रस्ताव रखे गए थे। पहला, इस दृष्टिकोण का कोई आधार नहीं है कि किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध आरोपित कदाचार के दोषी होने पर विचार करते समय, आपराधिक मुकदमों में अपनाए जाने वाले इस नियम को लागू किया जाना चाहिए कि कोई अपराध तब तक सिद्ध नहीं होता जब तक कि न्यायालय की संतुष्टि के लिए उचित संदेह से परे साक्ष्य द्वारा सिद्ध न हो जाए। यदि यह नियम किसी घरेलू जाँच न्यायाधिकरण द्वारा लागू नहीं किया जाता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में उच्च न्यायालय विभागीय जाँच करने वाले प्राधिकारियों के आदेश को अमान्य घोषित करने के लिए सक्षम नहीं है। उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जाँच करने वाले प्राधिकारियों के निर्णय पर अपील न्यायालय नहीं है। न्यायालय यह निर्धारित करने के लिए चिंतित है कि क्या जाँच उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा और उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है, और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं हुआ है। दूसरा, जहाँ कोई ऐसा साक्ष्य हो जिसे जाँच करने का दायित्व सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया हो और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का यथोचित समर्थन करता हो कि अपराधी अधिकारी आरोप का दोषी है, वहाँ साक्ष्य की समीक्षा करना और साक्ष्य के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है। उच्च न्यायालय ऐसे मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है जहाँ विभागीय प्राधिकारियों ने अपराधी के विरुद्ध कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के विपरीत या जाँच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए की हो या जहाँ प्राधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से परे कुछ कारणों से या अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होकर

निष्पक्ष निर्णय लेने में स्वयं को असमर्थ बना लिया हो या जहाँ निष्कर्ष पूरी तरह से मनमाना और मनमाना हो कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता। यदि जाँच अन्यथा उचित रूप से की जाती है, तो विभागीय प्राधिकारी तथ्यों के एकमात्र निर्णायक होते हैं और यदि कोई ऐसा कानूनी साक्ष्य है जिस पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता ऐसा विषय नहीं है जिसकी अनुमति दी जा सके। अनुच्छेद 226 के तहत रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना।“

12. उपर्युक्त निर्णय नियोक्ता द्वारा दोषी कर्मचारी पर विशेष दंड लगाने के लिए प्रयुक्त विवेकाधिकार की न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे का स्पष्ट विचार प्रस्तुत करते हैं। यह न्यायालय ऐसे मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी गई राय के स्थान पर अपनी राय नहीं रख सकता। यह माना गया है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा को तब तक संशोधित/कम सजा से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वह घोर या चौंकाने वाली अनुपातहीन है या इतनी अनुचित है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसी सजा नहीं दे सकता।

13. कानून के इस सुस्थापित प्रस्ताव पर विचार करते हुए कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार में न्यायालय द्वारा दंड आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, जब तक कि रिकॉर्ड पर यह स्थापित न हो जाए कि दुर्भावना के आरोप हैं।

14. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को देखते हुए, यह न्यायालय इस राय का है कि अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारी ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों का अवलोकन करने के बाद अपने निष्कर्ष दर्ज किए हैं और इसलिए, दोनों प्राधिकारियों ने विवादित आदेश पारित करने में कोई त्रुटि नहीं की है और इसलिए, वर्तमान याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

15. तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

16. स्थगन आवेदन और सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, भी खारिज किये जाते हैं।

17. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(अनूप कुमार ढांड),जे

आयुष शर्मा /104

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।

अधिवक्ता अविनाश चौधरी